International Journal of Sanskrit Research 2025; 11(1): 24-26

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2025; 11(1): 24-26
© 2025 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-11-2024
Accepted: 06-12-2024

पद्मा ठाकुर
पी-एच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

कौशल्या चौहान
प्रोफेसर संस्कृत विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
पद्मा ठाकुर
पी-एच. डी. शोधार्थी, संस्कृत विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय समरहिल, शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

ललितविस्तर में वर्णित बोधि पक्ष-धर्मों में प्रमुख चार ब्रह्मविहार

पद्मा ठाकुर, कौशल्या चौहान

सारांश
ललितविस्तर में तथागत के जन्म से लेकर धर्मचक्रप्रर्वतन तक का वर्णन प्राप्त होता है। सर्वार्थसिद्ध के बोधिसत्त्व बनने तथा बोधिसत्त्व से बुद्धत्व में परिणत कराने वाले धर्मों में कई बोधि पक्ष धर्मों का वर्णन प्राप्त होता है।

कूटशब्दः वैपुल्य-सूत्र, ब्रह्मविहार, बोधिसत्त्व, बोधि पक्ष-धर्म, बोधिचर्या, धर्मालोकमुख

प्रस्तावना
ललितविस्तर नव वैपुल्य सूत्र-ग्रन्थों अष्टसाहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता, गण्डव्यूह, दशभूमिश्वर, समाधिराज सूत्र, लंकावतार सूत्र, सद्धर्मपुण्डरीक, तथागतगुह्यक, सर्वणप्रभास सूत्र में से एक है जो अपनी विपुलता के कारण प्रमुख बौद्ध धर्म-ग्रन्थों में अन्यतम है। यह सूत्र ग्रन्थ तथागत भाषित धर्मपर्याय सूत्र है। बुद्ध के विषय में ललित-रीति से प्रवेश के लिए यह आत्मोपनयिका (आत्मकथा) है और यही रीति इसके नामकरण का मूल भी है।[1] यह ग्रन्थ उस समय की रचना है जब हीनयान और महायान साथ ही साथ प्रचरित हो रहे थे, इस ग्रन्थ की महत्ता दोनों यानों में प्राप्त है। यही कारण है कि प्रस्तुत ग्रन्थ के विषय वस्तु में महायानी ग्रन्थों के सिद्धान्त एवं अवधारणाएं भी प्राप्त होते हैं। वैपुल्य-सूत्र वह सामान्य पद है जो महायान के सूत्रों के लिए व्यवहृत होता है। इस ग्रन्थ में बुद्ध की लीला का ललित और सविस्तार वर्णन है तथा महायानी विचारों से ओत-प्रोत है।[2]

बोधि पक्ष-धर्मों में प्रमुख चार ब्रह्मविहार
ललितविस्तर में वर्णन मिलता है कि बोधिसत्त्व को अनेक देवता, नाग, यक्ष, गन्धर्व, असुर, गरुड, किन्नर, महोरग, इन्द्र, ब्रह्मा तथा लोकपाल आदि अन्तःपुर से निकलने के लिए प्रेरित करते हैं। वहीं अन्यत्र उल्लेख प्राप्त होता है कि बोधिसत्त्व चिरकाल से, असंख्येय कल्पों से लेकर, निरन्तर सब लौकिक एवं लोकोत्तर धर्मों पर दूसरों के चलाने से नहीं चलते प्रत्युत् वे स्वयं सब कुशलों या पुण्यों की मूलभूत धर्मचर्या के आचार्य थे। चिरकाल से वे काल के जानने वाले, वेला के जानने वाले, समय के जानने वाले तथा भूलचूक न करने वाले जानकार रहे हैं। वे सब समम काल के जानकार थे, कालेवेषी या कालदर्शी थे। इसके अतिरिक्त यह धर्मताप्रतिलम्भ है अर्थात् तथागत धर्म की मान्यता है कि अन्तिम जन्मधारी बोधिसत्त्वों के लिए अवश्य ही अन्तःपुर में जाकर दसों दिशाओं की लोकधातुओं में स्थित भगवान् बुद्धों को धर्म की द्वारभूत वाद्य यन्त्रों से ध्वनि कर प्रेरित किया जाना चाहिए।[3] इसी कारण यह वर्णन प्राप्त होता है कि बोधिसत्त्व को प्रेरित किया गया परन्तु इसके अतिरिक्त बोधिसत्त्व को बुद्धत्व में परिणत कराने के लिए कुछ बोधि पक्ष-धर्मों का वर्णन मिलता है क्योंकि सामान्य से भिन्न गुण धर्मों वाले ही बोधिसत्त्व के कारण होने में सक्षम हैं जैसे वह कुल चौंसठ प्रकार के गुणों से संपन्न होना आवश्यक है जिसमें अन्तिम बार जन्म ग्रहण करने वाले बोधिसत्त्व का प्रादुर्भाव होता है,

1. वैद्य, पी0 एल0, ललितविस्तर, प्रस्तावना-भाग, पृ0, 15-16
2. तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, पृ०, 34
3. इति हि भिक्षव आत्मरुतहर्षमुदीरयन्त आगता आसन् बोधिसत्त्वस्यात पुरमध्यगतस्य अनेकैर्देवैर्नागयक्षगन्धर्वासुरगरुडकिन्नरमहोरगषकब्रह्मलोकपाल ये बोधिसत्त्वस्य पूजाकर्मणे औत्सुक्यमापत्स्यते स्म। तत्र भिक्षवो बोधिसत्त्वो दीर्घरात्रमसख्येयान् कल्पानुपादाय सतत समितमपरप्रणेयोऽभूत्। सर्वलौकिकलोकोत्तरेषु धर्मेषु स्वयमेवाचार्य सर्वकुषलमूलधर्मचर्यायसु दीर्घकाल च कालज्ञो वेलाज्ञ समयज्ञोऽभूदच्युतोऽभिज्ञऽभूत्। अथ च पुनर्भिक्षवो धर्मताप्रतिलम्भ एष च चरमभाविकाना बोधिसत्त्वाना यदवष्य दषदिग्लोकधातुस्थितैर्बुदैर्भगवद्भिरन्त पुरमव्यगता सगीतितूर्यनिर्नादितैभिरेवरूपैर्धर्ममुखै संचोदितव्या भवन्ति।। ललितविस्तर, संचोदना परिवर्त, पृ0, 111-112

वह स्त्री बत्तीस प्रकार के गुणों से युक्त होती है जिसकी कोख में अन्तिम बार जन्म ग्रहण करने वाले बोधिसत्त्व का अवक्रमण या प्रवेश होता है।[4] वह माता अष्टांग उपोसथ के शील व्रत एवं उपासना करने वाली हो। ललितविस्तर में उल्लेख मिलता है कि मायादेवी स्वयं भी दस कुशल कार्यों के आचरण का व्रत लेती है और शुद्धोदन से भी अपने व्रत की पालना का अनुमोदन लेते हुए कहती है कि व्यापाद, दोष, खिल, मोह, मद से रहित अपने धन से सन्तुष्ट ही सब प्रकार की अभिध्या से दूर हो, सम्यक् प्रयुक्त अर्थात् मिथ्यादृष्टि से वियुक्त, अकुह, अनिलय तथा ईर्ष्या से रहित हो– ये दस कुशल कर्म जैसे हैं वैसे उनका आचरण करूँगी। हे नरेन्द्र ! शीलव्रतों में रमी हुई, सुसंवृत अर्थात् धर्मार्थ व्रत संयम ग्रहण कर चुकने वाली मुझमें कामतृष्णा न रखना। मेरे शीलव्रत तथा उपवास का आप अनुमोदन करो[5] इनके अतिरिक्त स्वयं तथागत के बत्तीस लक्षणों का भी वर्णन मिलता है।[6] उसी प्रकार बुद्धत्व ग्रहण करने के लिए विशेष गुण आवश्यक है यह बोधि पक्ष-धर्म भी कहे जाते हैं। ललितविस्तर में चार ब्रह्मविहार बोधि पक्ष धर्म के रूप में उल्लिखित हैं। समस्याओं से मुक्ति के निमित्त बुद्ध ने चित्त की परिशुद्धता पर बल दिया है और चित्त में व्याप्त क्लेशों को निर्मल कर चित्त को परिशुद्ध करने के बुद्ध ने अनेक मार्गों का प्रज्ञापन किया है। उन मार्गों में से एक मार्ग है– ब्रह्म विहार का अभ्यास करना। विसुद्धिमग्ग में अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में चार वृत्तियों अर्थात् मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा को ब्रह्म विहार कहा गया है।[7] अभिधम्मत्थसंगह में ब्रह्मविहार के विषय में उद्धृत है कि विहरन्ति एतेहीति विहारा, ब्रह्मणो विहारा, ब्रह्म विहारा अर्थात् मैत्री, करुणा आदि धर्मों के द्वारा जो साधक विचरण करते हैं, उन्हें विहार कहते हैं। इन चार धर्मों में से किसी एक पर स्थित रहना ही ब्रह्म विहार कहलाता है।[8] आचार्य चरक ने इन चार ब्रह्मविहारों को चार प्रकार की वैद्यवृत्ति माना है।[9] ललितविस्तर सूत्र ग्रन्थ में इस प्रकार वर्णन प्राप्त है कि बोधिसत्त्व को अपने द्वारा आचरित ब्रह्मविहार अर्थात् उत्तम चर्या को सिखाने के लिए प्रेरित किया गया कि सैंकडों जन्म तुमने मैत्री, करुणा, उत्तम मुदिता और उपेक्षा का आचरण किया है, वही चर्या जगत् को सिखलाओ[10] क्योंकि वे स्वयं सर्वदा मैत्री भावना के चित्त वाले हैं, करुणा की परम कोटि पर पहुँचे हुए हैं, मुदिता और उपेक्षा का ध्यान करने वाले हैं, ब्रह्मविहार की विधि के जानकार हैं। इन्हीं गुणों के कारण देवताओं द्वारा पुण्य देवताओं में महान् देवता हैं, पवित्र, निर्मल तथा शुद्ध चित्त के अनेक अनेक गुणों में पारंगत हैं।[11] बोधिसत्त्व ने इन चार ब्रह्मविहारों अर्थात् मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा को बोधिचर्या में समाविष्ट किया है।[12] चर्या के अतिरिक्त ब्रह्मविहारों को ब्रह्मपथ बतलाया गया है उल्लेख मिलता है कि सहस्त्र कल्पों तक चर्या को पूर्ण करके बोधिसत्त्व अपने तेज से, पुण्य से एवं श्री से मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा तथा दिव्यज्ञान वाले ब्रह्मपथ को जानकर बोधिवृक्ष की ओर चले हैं।[13] गोविन्दचन्द्र पाण्डेय के अनुसार पहले तीन ब्रह्म विहार सहानुभूति के भाव के विभिन्न रूप हैं। ध्यान के द्वारा उनकी वृद्धि की जा सकती है। चौथा ब्रह्म विहार मध्यस्थता का अभ्यास है। ब्रह्म विहार के अनुभव के कारण व्यक्ति के स्वभाव और चरित्र में मौलिक परिवर्तन हो जाता है क्योंकि यह निर्मल चित्त की सहज अभिव्यक्ति है।[14] इन ब्रह्मविहारों मैत्री, करुणा, मुदिता एवं उपेक्षा का क्रमशः वर्णन इस प्रकार है–

मैत्री भावना को पालि में मेत्ता कहते हैं, स्नेह करने वाले धर्म को मैत्री कहते हैं।[15] मैत्री भावना इन चार ब्रह्मविहारों में सर्वप्रथम वर्णित है। यह सभी जीवों के प्रति होता है। सभी प्राणी सुखी रहें, दुःख न पाएं, उनका कल्याण हो, इस प्रकार की इच्छा मैत्री भाव को जन्म देती है।[16] जिस प्रकार माता अपनी इकलौती संतान की रक्षा स्वयं के जीवन को भी मुश्किल में डाल कर करती है, इसी प्रकार व्यक्ति को समस्त सत्त्वों के प्रति मैत्री का भाव रखना चाहिए। बिना बाधा, वैर और शत्रुता के ऊपर, नीचे और तिरछे सम्पूर्ण संसार के प्रति असीम प्रेम बढाना चाहिए जो इस प्रकार की दृष्टि रखता है वह किसी मिथ्यादृष्टि में नहीं पडता, शीलवान् हो, विशुद्ध दर्शन से युक्त हो काम, तृष्णा का नाश कर पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है।[17] धम्मपद में कहा गया है कि जो मैत्री के साथ विहार करता है, बुद्ध के शासन में प्रसन्न है, श्रद्धावान् है, वह सभी संस्कारों का शमन कर सुखमय पद को प्राप्त करता है।[18] सद्धर्मपुण्डरीक के अनुसार मैत्री बल बुद्ध का निवास स्थान है।[19] ललितविस्तर के प्रचलपरिवर्त में माता मायादेवी बोधिसत्त्व से मैत्री भाव की याचना करती हुए कहती है कि हित और मैत्री का भाव चित्त में रखकर सब जनता को इकलौते बेटे के समान देखो।[20] ललितविस्तर में ब्रह्मविहारों को चित्त निर्मलताओं में गिना गया है जिसमें मैत्री के सन्दर्भ में कहा है कि जो इसको प्राप्त करेगा वह सभी प्रकार के द्वेष का नाश कर पाएगा।[21] इस वैपुल्य सूत्र-ग्रन्थ में वर्णन मिलता है कि पुण्य क्रिया की सभी वस्तुओं में जो उपधिक

---

4. एभिर्मार्षाष्चतुष्षष्टयाकारैः समन्वागतं च तत्कुलं भवति यस्तिष्चरमः भविको बोधिसत्त्व उत्पद्यते।
   द्वात्रिंषता मार्षा गुणाकारैः समन्वागता सा स्त्री भवति यस्याः स्त्रियाष्चरमभविको बोधिसत्त्वः
   कुक्षाववक्रामति।। वही, कुलषुद्धिपरिवर्त, पृ0, 17
5. व्यापाददोषखिलमोहमदप्रहीणा सर्वा अभिध्यविगता स्वधनेन तुष्टा।
   सम्यक्प्रयुक्त अकुहानिलया अर्नीष्यु कर्मा यथा दष इमे कुषला चरिष्ये।।
   मा त्वं नरेन्द्र मयि कामतृषां कुरुस्व षीलव्रतेष्वभिरताय सुसंवृत्ताय।
   मा ते अपुण्य नृपते भवि दीर्घरात्रं। अनुमोदयाहि मम षीलव्रतोपवासं।। वही, 5. 4-5
6. दीर्घरात्रं त्यागषील..... विचित्रस्वास्तिकनन्द्यावर्तसहस्त्रारचक्राङ्तिपादतल.... आयतपार्ष्णिरित्युच्यते ....
   दीर्घांग्डुलीत्युच्यते....वही, धर्मचक्रप्रवर्तनपरिवर्त, पृ0, 310
7. मैत्रा करुणा मुदिता उपेक्खा चेति इमा चतस्सो अप्पमज्जायो नामः, ब्रह्मविहारा ति पि वुच्चन्ति।।
   विसुद्धिमग्ग, दुतियो भागो, ब्रह्मविहारनिद्देसो, पृ0, 627
8. अभिधम्मत्थसंगहो, दुतियो-भाग, पृ0, 881
9. मैत्रीकारुण्ययार्तेषु षक्ये प्रीतिरूपेक्षणम्।
   प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिश्चतुर्विधेति।। चरक संहिता, सूत्रस्थान, 9. 26
10. मैत्रायां भव भव चरितस्त्वं। कारुण्ये वरमुदित उपेक्षे।
    यामेवा वरचरि चरितस्त्वं। तामेव चरि विभज जगस्य।। ललितविस्तर, 13. 19
11. एष सद मैत्रचित्तो करुणाय पार प्राप्तो मुदितो उपेक्ष ध्यायी ब्राह्मे पथि विधिज्ञः।
    एषोऽतिदेवदेवो देवेभि पूजनीयो षुभविमलषुद्धिचित्तो गुणनियुतपारप्राप्तः।। वही, 15. 80
12. दानं मि साक्षि तथ षीलु तथैव क्षान्ति; वीर्यापि साक्षि तथ ध्यान तथैव प्रज्ञा।
    चतुर अप्रमाण मम साक्षि तथा अभिज्ञा अनुपूर्वे बोधिचरि सर्व ममेह साक्षी।। वही, 21. 188
13. यस्या तेजतु पुण्यष्च षिरिये ब्राह्मः पथो ज्ञायते।
    मैत्री च करुणा उपेक्ष मुदिता ध्यानान्यभिज्ञास्तथा।।
    सोऽयं कल्पसहस्त्रवीर्णचरितो बोधिद्रुमं प्रस्थितः
    पूजां साधु करोथ तस्य मुनिनो आषिव्रते साधनां।। वही 19. 1
14. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0, 124
15. मिज्जति सिनि यहतीति मेत्त।। अभिधम्मत्थ संगहो, दुतियो-भाग, पृ0, 881
16. बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0, 123
17. माता यथा नियं पुत्तं आयुसा एक पुत्तमनुरक्खे।
    एवम्पि सब्बभूतेसु मानसं भावये अपरिमाणं।।
    मेत्तं च सब्बलोकस्मिं, मानसं भावये अपरिमाणं।
    उद्धं अधो च तिरियं च, असम्बाधं अवेरं असपत्तं।।
    दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा, दस्सनेन सम्पन्नो।
    कामेसु विनेय्य गेधं, न ही जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति।। सुत्त निपात, उरग वग्ग, मेत्त सुत्त, 7.9.10
18. मेत्ताविहारी यो भिक्खु पसन्नो बुद्धसासने।
    अधिगच्छे पदं सन्तं संखारूपसमं सुखं।। धम्मपद, 25. 9
19. मैत्री बलं च लयनं शान्ति सौख्य चीवरम,। सद्धर्मपुण्डरीक, धर्मभाणक परिवर्त, 247, सुखविहार परिवर्त, 451
20. न च राज दण्ड न भटा न तथा कुदण्डा नोत्पीडना नापि च तर्जन ताडना वा।
    सर्वान् प्रसन्नमनसो हितमैत्रीचित्ता वीक्षस्व देव जनतां यथ एकपुत्रं।। ललितविस्तर, 5. 10
21. यः कष्चिन्मार्षा इमं ललितविस्तरं धर्मपर्यायं भाष्यमाणमवहितश्रोतेः श्रोष्यति, सोऽष्ठौ चित्तनिर्मलताः
    प्रतिलप्स्यते। तद्यैथा यदुत मैत्रीं प्रतिलप्स्यते सर्वदोषनिर्घाताय। वही, निगम परिवर्त, पृ0, 317

अर्थात् द्रव्य साध्य होती है, उनका पराभव हो जाता है अर्थात् धन दौलत से किए जाने वाले पुण्य से मैत्री से किए जाने वाला पुण्य श्रेष्ठ होता है।[22] अनन्तर परिवर्तों में बोधिसत्त्व को मैत्री से परिपूर्ण मानकर मार-पुत्रों के द्वारा इस प्रकार कहा गया कि मैत्री वाले मुनि के शरीर पर न विष का, न शस्त्र का, न अग्नि का प्रभाव पडता है क्योंकि उनकी मैत्री ऐसी लोकोत्तरभावना वाली है कि उनपर फेंके जाने वाले शस्त्र फूल हो जाते हैं।[23] बोधिसत्त्व का चित्त सभी प्राणियों के लिए मैत्री वाला है।[24]

करुणा वह भावना है जो दूसरे के दुःख को देखकर स्वयं को उद्वेलित करती है यह हृदय में एक विशेष प्रकार का कम्पन उत्पन्न करती है। इस उद्वेलन अथवा कम्पन के फलस्वरूप व्यक्ति उस दुःख को दूर करने की इच्छा करता है।[25] कारुणिक व्यक्ति किसी को दुःख नहीं देता अपितु दुःख निवारणार्थ सदैव प्रयत्नशील रहता है। तथागत को भी कारुणिक कहा गया है क्योंकि उन्होंने करुणा को प्रधानता देते हुए प्राणिमात्र के दुःख के निरोध की बात की और स्वयं भी आजीवन दूसरों को दुःख से निवृत्त करने का अथक प्रयास किया।[26] शान्ति भिक्षु शास्त्री बुद्ध प्रवर्तित धर्म में करुणा को सार मानते हुए करुणा के अभाव में लोक की स्थिति को ही संदिग्ध मानते हैं।[27] ललितविस्तर में उल्लेख आता है कि करुणा के कारण अहिंसा परायणता होती है अर्थात् हिंसा की ओर कभी प्रवृत्ति नहीं होती।[28]

मुदिता मोदयति इति मुदिताः मोदन अर्थात् जो प्रसन्न करती है, इसलिए मुदिता है। शान्तिभिक्षु शास्त्री उल्लेख करते हैं कि मुदित व्यक्ति के वैशिष्ट्य का उल्लेख मिलता है कि शान्तचित्त तथा मायाविहीन होता हुआ, प्राणियों को धर्मोपदेश देता हुआ हितकारी प्राणी हृदय में सदा प्रमुदित रहता है।[29] जिस प्रकार पराया दुःख देखकर व्यक्ति करुणायुक्त होता है, उसी प्रकार दूसरों को सुखी और सम्पन्न देखकर प्रसन्न होने की भावना ही मुदिता है। ललितविस्तर के अनुसार मुदिता के कारण सब प्रकार की अरति या चित्त की बेचैनी का अपकर्षण अर्थात् निवारण हो जाता है।[30]

उपेक्षा का तात्पर्य है समभाव की स्थिति। सुख-दुःख, जय-पराजय, मान-अपमान आदि सभी परिस्थितियों में समभाव बनाए रखना ही उपेक्षा है। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में भी प्रसन्न एवं दुःखी न होना ही उपेक्षा है।[31] सुत्त-निपात के पुराभेदसुत्त के अन्तर्गत भगवान् उपेक्षा की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जो सदैव स्मृतिमान् रहने वाला है जो लोक में सभी के प्रति समभाव रहता है, ऐसे व्यक्ति के समूल राग का नाश हो जाता है।[32] आचार्य शान्तिदेव ने कहा है जब प्राणी अपने दुःखों से मुक्त होते हैं उस समय आनन्द का समुद्र जो लहरें लेता है, उसके समक्ष मोक्ष का सुख तुच्छ है।[33] इस उपेक्षा ब्रह्मविहार में वास्तव में दार्शनिक उदासीनता का अभ्यास किया जाता है। यह भावना रखने वाला सत्पुरूष जीवों के प्रति सम भाव वाला हो जाता है। वह प्रिय-अप्रिय में भेद नहीं करता है।[34] ललितविस्तर में वर्णित है कि उपेक्षा वह धर्मालोकमुख है जिसके कारण काम के प्रति जुगुप्सा अर्थात् घृणा हो जाती है।[35] इस प्रकार मैत्री भावना द्वेष का प्रतिघात करती है। करुणा विहिंसा का, मुदिता अप्रीति का तथा उपेक्षा राग का प्रतिघात करती है।[36] द्वेष, विहिंसा, अप्रीति एवं राग रूपी दोषों को त्याग कर तथा सुन्दर मनोभाव से बोधिचित्त अन्य बोधि पक्षीय धर्मों पारमिता, बल इत्यादि को प्राप्त कर सर्वकल्याण की ओर प्रवृत्त होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ललितविस्तर, अनुवादक शान्तिभिक्षु शास्त्री, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ हरिमाधव शरण संस्करण, प्रथम 1984
2. ललितविस्तर, सम्पादक P.L.Vaidya मिथिलाविधापीठप्रधनिन प्रकाशितः Post Graduate Studis and Research in Sanskrit Learning Darbhanga, 1958
3. सद्धर्मपुण्डरीक अनुवादक डॉ० राममोहन दास, प्रकाशकः बिहार–राष्ट्रभाषा–परिषद् सैदपुर, विस्तार पथ, पटना–4 संस्करण–प्रथम 1882 शब्दकाब्द, विक्रमाब्द– 2023
4. अभिधम्मत्थसंगहो (दुतियो भागो) आचार्य अनुरुद्ध–प्रणीत सम्पादक अनुवादक तथा व्याख्याकार च्नइसपैमक इल भदन्त खेतधम्म (ब्रह्मदेश) रामशंकर त्रिपाठी वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी–2, बुद्धाब्द 2510 शकाब्द। खीष्टाब्द 1967
5. सुत्तनिपात सम्पादकः अनुवादक डॉ भिक्षु धर्मरक्षित प्रकाशकः मोतीलाल वनारसीदास, मुख्य कार्यालयः बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–7
6. बोधिचर्यावतार, प्रवचनकारः परम पावन दलाई लामा, प्रथम संस्करण 1983, द्वितीय 1987, तृतीय 1998, सम्पादकः प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, प्रकाशकः केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी–221007
7. धम्मपद–अट्ठकथा पठमो भागो निदेश कनव नालन्दा महाविहार प्रकाशक–चौखम्बा संस्कृत सीरीज, गोपाल मन्दिर लेन, पो बा नं० 8, वाराणसी–1 (उत्तरप्रदेश) 1976 संस्करण
8. बोद्धिचर्य्या (राहुल सांस्कृत्यायन) गौतम बुक सेन्टर चन्दन सदन सी 263 ए गली नं० 9, हरदेवपुरी, शाहदरा/1978 दिल्ली–110093 प्रथम संस्करण 1930 संस्करण 2010
9. तान्त्रिक बौद्ध साधना और साहित्य, लेखक नागेंद्रनाथ उपाध्याय प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा काशी, प्रथम संस्करण, 2015
10. बौद्वधर्म के विकास का इतिहास, लेखकः डॉ० गोविन्दचन्द्र पाण्डेय प्रकाशन, हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, लखनऊ संस्करणः प्रथम 1963
11. बुद्धविजयकाव्यम् लेखक एवं सम्पादकः शान्तिभिक्षु शास्त्री, प्रकाशक केन्द्रीय बौद्ध विद्या संस्थान, योगलमसर, लेह लदाख, सर्वाधिकार सुरक्षित, 1988

22. मैत्री धर्मालोकमुखं सर्वोपधिकपुण्यक्रियावस्त्वभिभावनतायै संवर्तते। वही, धर्मालोकमुखपरिवर्त, पृ०, 23
23. मैत्रीवतस्तस्य मुनेः षरीरे विषं न षस्त्रं क्रमते न चग्निः।
क्षिप्तानि षस्त्राणि व्रजन्ति पुष्पतां मैत्री हि लोकोत्तर भावि तस्य।। वही, 21. 31
24. काये च वाचाय विषुद्ध चित्ते सर्वेषु सत्त्वेषु च मैत्रचेतः।
न तं षस्त्राणि विषाणि हिंसे तस्मान्निवतमिहे तात सर्वे।। वही, 21. 52
25. पर दुख सति हृदय कम्पन, किणाति वा पर दुखं, हिंस्रति, विनस्सेति ति अत्थो।
करुणा परदुक्खस्स अपनयन लक्खणा। अविहिंसा उपट्ठाना। दुक्खभूतानमनाथ भावदस्सन पटठाना।।
अभिसम्मत्थ संगहो, दुतियो-भाग, पृ0, 890
26. दुखेन संपीडित दृष्ट्वा सत्वान्निर्वाण तत्राभ्युपदर्षयामि। सद्धर्मपुण्डरीक, उपाय कौषल्य परिवर्त, पृ०, 67
27. बुद्धैः प्रवर्तिते धर्मे करुण्ये वस्तु सारवत्।
विना करुणया लोकस्थितिः संषयिता ननु।। बुद्धविजयकाव्यम, 77. 30
28. करुणा धर्मालोकमुखमविहिंसापरमतायै संवर्तते। ललितविस्तर, धर्मालोकमुखपरिवर्त, पृ०, 23 ; करुणा
प्रतिलप्स्यते सर्वविहिंसोत्सर्गाय।। वही, निगम परिवर्त, पृ0, 317
29. प्रषान्तमानसो लोकान् दिषन् धर्ममायायसा।
बहूनां हितकर्तासौ हृदये संप्रमोदते।। बुद्धविजयकाव्यम्, 96, 38
30. मुदिता धर्मालोकमुखं सर्वारत्यपकर्षणतायै संवर्तते। ललितविस्तर, धर्मालोकमुखपरिवर्त, पृ०, 23 ;
मुदितां प्रतिलप्स्यते सर्वारत्यपकर्षणतायै। वही, निगम परिवर्त, पृ0, 317
31. उपेक्खको सदा सतो, न लोके मञ्ञते समं।
न विसेसी न नीचय्यो तस्स न सन्ति उस्सदा।। सुत्तनिपात, 8. 10. 8
32. उपेक्खको सदा सतो, न लोके सञ्ञते समं
न विसेसी न नीचेय्यो, तस्स न सन्ति उस्सदा।। वही, 4. 10. 9
33. मैत्रीकारूण्ययार्तेषु षक्ये प्रीतिरूपेक्षणम्।
प्रकृतिस्थेषु भूतेषु वैद्यवृत्तिष्चतुर्विधेति।। बोधिचर्यावतार, 8. 26
34. आचार्य, नरेन्द्र देव, बौद्ध-धर्म-दर्षन, पृ०, 94-95
35. उपेक्षा धर्मालोकमुखं कामजुगुप्सनतायै संवर्तते। ललितविस्तर, धर्मालोकमुखपरिवर्त, पृ०, 23 ; उपेक्षा
प्रतिलप्स्यते अनुनयप्रतिघोत्सर्गाय। वही, निगम परिवर्त, पृ0, 317
36. आचार्य, नरेन्द्र देव, बौद्ध-धर्म-दर्षन, पृ०, 96